

विश्व मामलों की भारतीय परिषद

सप्रू हाउस, बाराखम्बा रोड, नई दिल्ली

भारत अफगानिस्तान संबंध

अफगानिस्तान में भारतीय दूतावास से 1995-96 की अवधि के घटनाक्रम पर
टिप्पणियां

राजदूत आजाद सिंह तूर

प्रथम प्रकाशन 2018

प्रतिलिप्याधिकार © विश्व मामलों की भारतीय परिषद

आईएसबीएन:

सभी अधिकार सुरक्षित हैं। इस प्रकाशन का कोई भी भाग कॉपीराइट स्वामी की लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना उद्धृत, पुनर्प्राप्ति प्रणाली में संग्रहित या किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम , इलेक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल, फोटोकॉपी रिकॉर्डिंग से या अन्यथा प्रसारित नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकाशन में तथ्यों और विचारों की जिम्मेदारी विशेष रूप से लेखक है और उसकी व्याख्या विश्व मामलों की भारतीय परिषद नई दिल्ली के विचारों को प्रतिबिंबित नहीं करती है।

विश्व मामलों की भारतीय परिषद

सपू हाउस, बाराखंभा रोड

नई दिल्ली -110 001, भारत

दूरभाष : + 91-11-23317242 फ़ैक्स: + 91-11-23322710

www.icwa.in

विषय-सूची

1. प्रस्तावना
2. ऐतिहासिक संदर्भ
3. (क) भारत-अफगानिस्तान संबंध : ऐतिहासिक संदर्भ
(ख) अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप और भारत का पक्ष
(ग) सोवियत आक्रमण के बाद का अफगानिस्तान
4. 1995-96 में भारतीय मिशन का पुनः खुलना और आंतरिक स्थिति
5. 1996 में काबुल की पराजय
6. अन्य देशों के साथ अफगानिस्तान के संबंध
(क) पाकिस्तान
(ख) ईरान
(ग) रूस
(घ) अमेरिका
7. निष्कर्ष
संदर्भ

प्रस्तावना

काबुल शासन ने मार्च, 1995 में काबुल में अपने दूतावास पुनः खोलने के लिए विभिन्न विदेशी सरकारों को किए गए अनुरोध से एक प्रमुख राजनयिक पहल की शुरुआत की। इस प्रयास के पीछे मुख्य कारण यह था कि काबुल अब अनेक वर्षों बाद तनाव और संकट की परिधि से बाहर निकल चुका था। अहमद शाह मसूद की सेनाओं ने तालिबान को काबुल के बाहरी प्रांतों तक पीछे धकेल दिया था। गुलबदिन हेकमतयार के हिज्ब-ए-इस्लामी को तालीबान ने पहले से ही चारास्याब और रिशकोर से उखाड़ दिया था और अब वह जलालाबाद-काबुल राजमार्ग पर सरोबी में चला गया था। इस प्रकार, अफगानिस्तान की राजधानी और उसके बाहरी भाग सरकार के पूर्व नियंत्रण में थे। शहर में जन-जीवन सामान्य हो गया था। काबुल हवाई-अड्डा शुरू हो गया था तथा अफगान एयरलाइंस अरियाना ने अपनी काबुल-नई दिल्ली उड़ान प्रारंभ कर दी थी। इसके अलावा, बुरहनुद्दीन रब्बानी ने यह घोषणा की थी कि वे अफगानिस्तान के राष्ट्रपति के पद पर बने रहेंगे। अपने कार्मिकों की सुरक्षा और संरक्षा पर विचार करते हुए भारत सरकार ने अपने मिशन को पुनः खोलने का निर्णय लिया तथा मुझे भारत के सीडीए के रूप में नियुक्त किया गया। मिशन 2 मई, 1995 को खुला। अफगानिस्तान की आंतरिक स्थिति का वर्णन तभी किया गया, जब मैंने काबुल में अपने आगमन के उपरांत उसे व्यक्तिगत रूप से देखा। इसी प्रकार, अफगानिस्तान के भारत तथा अन्य देशों के साथ संबंधों का वर्णन 1995-96 के मेरे कार्यकाल के दौरान मुझे हुए अनुभवों और संस्करणों के आधार पर किया गया है। जहां तक सोवियत हस्तक्षेप पर भारत के पक्ष का संबंध है, मैंने यह पाया है कि इस बारे में कुछ मुजाहिद्दीन नेताओं के मध्य कुछ असंतोष था। वे चाहते थे कि भारत द्वारा अफगानिस्तान पर किए गए सोवियत आक्रमण की सार्वजनिक रूप से निंदा की जानी चाहिए थी। तथापि, अमेरिका द्वारा आर्थिक सहायता और सैन्य आपूर्तियों के रूप में दी गई पाकिस्तान को सहायता तथा अमेरिका के चीन के साथ पुनः वार्ताएं आरंभ करने के रुख को ध्यान में रखते हुए भारत सोवियत संघ के साथ अपनी भागीदारी को संकट में नहीं डाल सकता था।

विशेष रूप से सितम्बर के बार से जीवन-यापन की स्थिति अत्यंत कठिन बन गई जब तालीबान ने काबुल के दक्षिण-पूर्व में आगे कदम बढ़ाए। तालीबान ने एक बार पुनः काबुल पर रॉकेट दागने आरंभ कर दिए थे। असहज स्थिति के बावजूद, हमने अंत तक अफगानिस्तान के लोगों को अपना समर्थन देना जारी रखा। जनता ने हमें अत्यंत प्रेम और स्नेह दिया। वस्तुतः अफगानी जनता के मध्य भारत की प्रतिष्ठा अत्यंत सराहनीय रही है। हमने 26 सितम्बर, 1996 को काबुल छोड़ा जब अहमद शाह मसूद ने उत्तर की ओर बढ़ने का फैसला किया और हमें यह कहा गया कि बिगड़ती हुई सुरक्षा स्थिति को ध्यान में रखते हुए हम अपना दूतावास बंद कर लें।

ऐतिहासिक संदर्भ

क. भारत-अफगानिस्तान संबंध : ऐतिहासिक संदर्भ

भारत और अफगानिस्तान के एक लंबे समय से ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। भारत और अफगानिस्तान के लोगों के बीच संबंधों का उद्गम सिंधु घाटी की सभ्यता में देखा जा सकता है। एक समय, अफगानिस्तान अविभाजित भारत का ही भाग था तथा सातवीं शताब्दी ई. में इस्लाम के आगमन तक वह बौद्ध, हिन्दू और यहूदी संस्कृतियों द्वारा फला-फूला। इसके उपरांत, दोनों ही देश शताब्दियों से एक-दूसरे के पड़ोसी रहे हैं।

¹मुजफ्फर एच. सैयद ने भारत-अफगानिस्तान संबंधों पर अपनी पुस्तक में आमुख में ही स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया है कि अफगानिस्तान समूचे इतिहास के दौरान अनेक शताब्दियों से भारत साम्राज्य का विस्तारित भाग रहा है। उन्होंने यह भी कहा है कि अविभाजित भारत में, पूर्व-पश्चिमी क्षेत्र विभिन्न साम्राज्यों का भाग था जो अफगानिस्तान में स्थित थे।

लेकिन पिछले लगभग सत्तर वर्षों में, भारत के विभाजन के बाद, दोनों देश अब निकटतम पड़ोसी नहीं रहे हैं। पाकिस्तान भारत और अफगानिस्तान के बीच आता है। फिर भी, दोनों ही देशों के बीच संबंध पारस्परिक दृष्टि से सुदृढ़ और मैत्रीपूर्ण रहे हैं। भारत के लिए, अफगानिस्तान के साथ संबंध इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए महत्वपूर्ण है कि हालांकि भारत अफगानिस्तान के साथ अपनी सीमा के एक अत्यंत छोटे भाग को ही साझा करता है, परंतु, संयोगवश, वह भाग पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (पीओके) में पड़ता है। दक्षिण एशिया में व्याप्त सांस्कृतिक संबंध और रणनीतिक पहलू भारत के लिए इस बात को अनिवार्य बताते हैं कि वह अफगानिस्तान के साथ लाभप्रद द्विपक्षीय संबंध स्थापित करे। दुर्भाग्यवश, दोनों देशों के बीच संबंधों में उस अवधि के दौरान ठहराव आया था जब तालीबान 27 सितम्बर, 1996 से 16 नवम्बर, 2001 तक सत्ता में था।

भारत विभिन्न अफगान शासकों को निरंतर सहयोग प्रदान करता आ रहा है, जो सम्राट जाहिर सिंह के साथ प्रारंभ हुआ था तथा वर्तमान अफगानिस्तान राष्ट्रपति अशरफ गिलानी तक जारी है। यहां तक कि अफगानिस्तान पर सोवियत द्वारा कब्जा करने के दौरान, भारत दक्षिण एशिया का एकमात्र ऐसा देश था जिसने काबुल में सोवियत-समर्थित सरकार को मान्यता प्रदान की तथा निरंतर सहायता प्रदान करना जारी रखा। अफगानिस्तान के आंतरिक विवादों के प्रति भारत के तटस्थ और निर्माणात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए भारत की नीति के क्रियान्वयन में कोई परेशानी नहीं हुई, भले ही वहां कोई भी सरकार सत्ता में क्यों न रही हो।

अफगानिस्तान भारत के मानसपटल पर इतना महत्वपूर्ण स्थान रखता है कि भारत 1993 के प्रारंभ में ही वहां अपना दूतावास पुनः खोलने में समर्थ रहा जब अफगानिस्तान में सामान्य स्थिति पूर्णतः बहाल भी नहीं हुई थी। भारत को इसकी कीमत भी चुकानी पड़ी। हिकमतयार की हिज्ब-ए-इस्लामी सेनाओं द्वारा चारास्याब से एक रॉकेट के माध्यम से दागे गए गोलों से वहां तैनात हमारे भारतीय सुरक्षा कर्मियों में से एक की मृत्यु हो गई। जब ऐसे रॉकेटों से निशाने रोज-रोज ही लगने लगे, तो भारत को वहां से जाना पड़ा। भारत ने पुनः सितम्बर, 1993 में अपना दूतावास खोला। यह पूरी तरह से कार्य करने लगा था। लेकिन, ऐसा हुआ कि हमारे सीडीए ने 31 दिसम्बर को रात्रिभोज का आयोजन किया था, परंतु हिज्ब-ए-इस्लामी सेनाओं ने शास डाराक की ओर रॉकेटों से गोली-बारी आरंभ कर दी जहां हमारे दूतावास का रिहायशी क्षेत्र स्थित था। अतिथियों के आने का समय था। उनमें से कोई भी रात्रिभोज में शामिल होने के लिए वहां तक नहीं पहुंच पाया क्योंकि भारी गोला-बारी हो रही थी। इसके बाद, सुरक्षा की स्थिति इतनी खराब हो गई कि जनवरी, 1994 में हमारे अधिकांश मिशनों को अस्थायी तौर पर बंद करना पड़ा।

जब काबुल सुरक्षित नहीं रह गया, तो भारत ने 1994 में हेरात में कतिपय राजनयिक उपस्थिति दर्ज करने पर विचार किया तथा इसकी संभावनाओं की तलाश करने के लिए एक सर्वेक्षण दल ने उस स्थान का दौरा किया। यह दल हेरात के गर्वनर जनरल इस्माइल खान के साथ रहा। लेकिन, विभिन्न कारणों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें यात्रा/परिवहन के लिए संपर्क भी शामिल थे, यह निर्णय लिया गया कि इस प्रस्ताव को कुछ समय के लिए आस्थगित कर दिया जाए। काबुल में दल के नेता ने अहमद शाह मसूद तथा अन्य अफगान गणमान्य व्यक्तियों के साथ भेंट की। भारत यथाशीघ्र अपने मित्र अफगान के मध्य अपनी उपस्थिति दर्ज करना चाहता था।

लेखक द्वारा यह उल्लेख भी किया गया है कि सातवीं शताब्दी में इस्लाम के आगमन तक अफगानिस्तान बौद्ध, हिन्दू और यहूदी संस्कृतियों से प्रभावित रहा था।

वस्तुतः उपर्युक्त स्थिति को विभिन्न इतिहाकारों द्वारा भी दोहराया गया है। मौर्य साम्राज्य का इतिहास इसका साक्षी है। मौर्य साम्राज्य (विशेषतः अशोक के काल तक) हेरात तक फैला था, जो ईरान की सीमा पर स्थित खोरासन प्रांत के समीप है।

² अफगानिस्तान पर हमारी नीति के संबंध में, भारत ने निरंतर काबुल के साथ अपना संपर्क बनाए रखा जब तक कि वहां की सरकार ने भारत का विरोध नहीं किया (तालीबान ही एकमात्र अपवाद था क्योंकि वे भारत के प्रति वैमनस्य रखता था) श्री पी. स्टोबदन ने भी यह उल्लेख अपनी पुस्तक 'दि अफगान एंड इंडिया' में किया है, पृ. 64.

इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि अफगानिस्तान में नई स्थिति के साथ स्वयं को यथाशीघ्र ढाल लेने की भारत की योग्यता उस देश के प्रति क्रियान्वित किए जा रहे भारत के आधारभूत नीतिगत ढांचे के फलस्वरूप विकसित हुई है तथा इन पहलुओं को भविष्य में जारी रहने की संभावना है। सबसे पहले, भारत की प्राथमिकता एक सुदृढ़ और स्थिर अफगानिस्तान सुनिश्चित करना था क्योंकि उसका दृढ़ विश्वास था कि उस देश की प्रादेशिक एकता भारत की अपनी सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। दूसरे, भारत ने सदैव ही अफगानिस्तान के साथ अपने मैत्रीपूर्ण संबंधों को सम्मान दिया है, न केवल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारणों से, बल्कि रणनीतिक कारणों से भी, ठीक वैसे ही, जैसे ईरान के साथ उसके संबंध रहे हैं। तीसरे, भारत ने अफगानिस्तान की गुट-निरपेक्ष और स्वतंत्र विदेश नीति का सदैव ही सम्मान किया है। यह अफगानिस्तान में किसी भी हलचल/क्रांति अथवा परिवर्तन का भी समर्थक रहा है जिसकी प्रकृति प्रगतिशील है तथा इसके द्वारा अफगान लोगों के मध्य आधुनिकीकरण और सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण लाए जाने की संभावना है। चौथे, भारत ने किसी भी आंतरिक विवाद में किसी का पक्ष न लेने तथा केवल काबुल में शासक पक्ष के साथ ही तब तक बातचीत करने की अपनी सतत् नीति में कभी भी कोई परिवर्तन नहीं किया है, जब तक कि वहां की सरकार भारत के प्रति वैमनस्य का भाव न रखती। संश्लेषण, तालीबान भी केवल ऐसा अपवाद रहा है जिसे भारत ने मान्यता नहीं दी है। पांचवें, भारत ने आंतरिक विवादों में किसी भी प्रकार से भागीदारी किए बिना अफगानिस्तान को आर्थिक और मानवीय सहायता प्रदान की।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि पाकिस्तान द्वारा अफगानिस्तान के साथ संबंधों को कड़वा बनाने और इसी कारण पाकिस्तान-अफगान संबंधों में भारी दरार आने से भारत को राजनयिक लाभ मिला। ऐसा बेनजीर भुट्टो और नवाज शरीफ के कार्यकाल के बीच सरकार में हुए तेज परिवर्तनों के फलस्वरूप हुआ था। वस्तुतः यह सुस्थापित तथ्य है कि पाकिस्तान की अफगान नीति सेना और आईएसआई के हाथों में बनी रही। पाकिस्तान सेना प्रमुखों ने अधिकारिक तौर पर यह कहा कि वे अफगान और कश्मीर नीति पर सिविल सरकार के नियंत्रण की अनुमति नहीं दे सकते हैं। अनेक अफगान नेताओं ने असंतोष व्यक्त किया कि पाकिस्तानी गुलबदिन हेकमत्यार को बहुत अधिक प्रमुखता प्रदान कर रहे हैं। कुछ रिपोर्टों के अनुसार, आईएसआई अन्य अफगान समूहों की उपेक्षा करते हुए उसे अमेरिकी सहायता लगभग पचास प्रतिशत भाग दे रही है। गुलबदिन हेकमत्यार के प्रति पाकिस्तान के सहयोग के अन्य महत्वपूर्ण कारकों में से एक कारक गुलबदन की यह प्रतिबद्धता होना है कि वह भारत के साथ अफगानिस्तान के पारंपरिक और घनिष्ठ संबंधों को समाप्त कर देगा। आईएसआई के लिए, हेकमत्यार भारत के साथ कोई विवाद होने की स्थिति में अफगानिस्तान में पाकिस्तान के रणनीतिक पकड़ मजबूत करने के स्वप्नों को पूरा करने के लिए सर्वथा योग्य उम्मीदवार के रूप में अर्हक होता है। पाकिस्तान द्वारा की गई अन्य गलतियों में एक गलती डूरंड रेखा के मुद्दे पर मोजाद्देदी सरकार के साथ कोई समझौता करने के लिए जल्दबाजी में लिया गया उनका निर्णय है। काबुल ने एक बार पुनः दिल्ली के सहयोग की गुहार लगाई जब सिब्गातुल्लाह मोजाद्देदी ने इसके तत्काल पश्चात् दिल्ली की यात्रा की तथा भारतीय नेताओं के साथ संपर्कों को नवीकृत किया। इसके परिणामस्वरूप रब्बानी ने भी समान रूख लिया तथा डूरंड रेखा पर समझौता करने से इंकार कर दिया।

उपर्युक्त नीति को ध्यान में रखते हुए, भारत ने राष्ट्रपति बरहनुद्दीन रब्बानी के साथ तालमेल बैठाया और 2 मई, 1995 को अपना दूतावास खोल दिया। उन्होंने अनेक अवसरों पर न केवल मानवीय और आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए बल्कि अफगानिस्तान में पाकिस्तान के हस्तक्षेप के विरुद्ध उसकी आवाज को उठाने में सहयोग के लिए भारत सरकार के प्रति अपना आभार व्यक्त किया। संभवतः ऐसा कोई दिन नहीं गया था, जब उन्होंने अर्थपूर्ण चर्चा के लिए भारतीय सीडीए से वार्तालाप न किया हो। चूंकि पाकिस्तान ने आवागमन के लिए पाकिस्तान के माध्यम से गुजरने वाले मार्ग की कभी भी अनुमति नहीं दी थी, अतः भारत को हवाई मार्ग द्वारा अनिवार्य सामान की ढुलाई करनी होती थी। इंदिरा गांधी बाल चिकित्सालय ने भी भारत के लिए पर्याप्त प्रशंसा बटोरी थी। भारत ने उस अस्पताल के लिए सदैव ही दवाइयों और चिकित्सा उपकरणों की आपूर्ति जारी रखी। भारत ने इतनी अधिक मात्रा में मानवीय सहायता प्रदान की थी जिससे पाकिस्तान में असहजता की स्थिति उत्पन्न हो

गई। भारत और अफगानिस्तान के बीच संबंध दिन-प्रतिदिन गहरे होते चले जा रहे थे और पाकिस्तान ने यह कहना प्रारंभ कर दिया कि भारत काबुल शासन को सैन्य सहायता प्रदान कर रहा है।

फरवरी, 1996 में, अहमद शाह मसूद ने भारतीय सीडीए द्वारा अपने घर में आयोजित इफ्तार की दावत में भाग लिया। इसमें अनेक मंत्री भी आए थे। नई दिल्ली में अफगानिस्तान के नामित राजदूत मसूद खलीली भी वहां उपस्थित थे। अहमद शाह मसूद ने भारत के बारे में प्रशंसनीय शब्द कहे तथा भारत द्वारा दी गई सहायता और विषम परिस्थितियों में भी काबुल में अपना दूतावास खोले रखने के लिए भारत की सराहना की। अनेक वरिष्ठ भारतीय राजनयिकों ने भी काबुल का दौरा किया तथा उन्होंने राष्ट्रपति बरहनुद्दीन रब्बानी, अहमद शाह मसूद, गुलबदिन हेकमत्यार आदि से भेंट की और पारस्परिक हित के विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की। डा. अब्दुल रहमान, नागर विमानन मंत्री तथा मसूद के घनिष्ठ सहयोग ने भारतीय गणमान्य व्यक्तियों के भेंट करने के लिए अनेक बार दिल्ली की यात्राएं कीं।

गुलबदिन हेकमत्यार को 29 जून, 1996 को अफगानिस्तान के प्रधानमंत्री के रूप में शपथ दिलाई गई। भारत सरकार इस नए घटनाक्रम से इतनी प्रसन्न हुई कि प्रधानमंत्री देवेगौड़ा ने नए प्रधानमंत्री को बधाई संदेश प्रेषित किया। इसके उपरांत, जब भारत के सीडीए ने हेकमत्यार के साथ भेंट की, तो प्रधानमंत्री ने किसी का भी पक्ष लिए बगैर अफगान विवाद का समाधान करने के लिए भारत के पक्ष की सराहना की। नए अफगान प्रधानमंत्री ने भी 15 अगस्त, 1996 को आयोजित समारोह में भाग लेने के लिए भारत के सीडीए द्वारा उन्हें दिए गए निमंत्रण का सम्मान किया।

कृत्रिम पैरों को प्रत्यारोपित करने के लिए चिकित्सकों के एक दल ने दो बार काबुल का दौरा किया। अफगानिस्तान में ऐसे अनेक लोग थे जिनके बारूदी सुरंगों से पैर क्षतिग्रस्त हो गए थे। काबुल में सेना अस्पताल में एक स्वास्थ्य शिविर का आयोजन किया गया तथा भारतीय चिकित्सकों ने वहां भारत के लिए पर्याप्त सद्भावना अर्जित की। कुछ अफगानी नेताओं को हमारी सोवियत परिसंघ के साथ घनिष्ठता से कुछ आपत्तियां थीं परंतु उन्होंने कभी भी भारत के प्रति वैमनस्य का भाव व्यक्त नहीं किया। उनमें से अनेक मैत्री के हमारे प्राचीन संबंधों की प्रशंसा करते थे।

पश्च-सोवियत अवधि के अनेक वर्षों तक भारत द्वारा दर्शाई गई सहनशीलता के कारण भी भारत को काबुल के नए शासकों के साथ अपनी मैत्री को बहाल करने में सहायता प्राप्त हुई। विशेष रूप से 1995-96 के दौरान, गंभीर संकट से जूझ रहे शहर में भारतीय दूतावास खुला रहना अत्यंत ही कठिन कार्य था जहां स्थिति अत्यंत नाजुक थी। कई दिनों तक वहां भारत के अधिकारी चारास्याब और रिशकोट के समीप काबुल के बाहरी इलाकों में जमायत-ए-इस्लामी और तालिबानी सेनाओं के बीच निरंतर चलने वाली गोलीबारी के कारण सो भी नहीं पाए थे। रब्बानी सरकार हमारी कठिनाइयों के बारे में पूरी तरह से अवगत थी। संभवतः, यही कारण था कि राष्ट्रपति रब्बानी ने सभी तीन सीडीए (भारत, ईरान और तुर्की) तथा इंडोनेशिया के राजदूत अब्दुल गनी को 'सैयद जमालुद्दीन पुरस्कार' देने का निर्णय लिया ताकि हमारा हौसला बुलंद बना रहे। इस संबंध में एक समारोह का आयोजन किया गया जहां राष्ट्रपति ने सभी चारों देशों द्वारा निभाई जा रही सकारात्मक भूमिका के लिए प्रशंसा के शब्दों की बौछार कर दी। हम चारों राजदूतों के बीच फोन पर भी निरंतर व्यक्तिगत रूप से वार्ताएं हुआ करती थीं।

भारत और अफगानिस्तान के बीच संबंध इतने घनिष्ठ और सुदृढ़ हो गए थे कि नई दिल्ली एक बार पुनः काबुल का वातायन और द्वार बन गई थी जहां से रब्बानी की सरकार ने बाहरी विश्व के साथ अपने द्विपक्षीय संबंधों का विस्तार और वैविध्यीकरण करने का शुभारंभ किया तथा अफगानिस्तान के विरुद्ध पाकिस्तान की घुसपैठी प्रवृत्ति का सामना किया। नई दिल्ली एकमात्र ऐसा स्थान भी बन गई थी जहां से अफगान की राष्ट्रीय एयरलाइन एरियाना अपनी नियमित उड़ानें संचालित करती थी।

ख. अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप और भारत का पक्ष

जब दिसम्बर, 1979 में सोवियत संघ ने अफगानिस्तान में अपनी सेनाएं भेजी थीं, तो भारत के प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह थे और देश रूपांतरण के दौर से गुजर रहा था। उन्होंने इस घटना की कड़ी निंदा की। न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र के हमारे प्रतिनिधि को कहा गया कि वह इस आक्रमण की आलोचना करते हुए एक वक्तव्य जारी करे जिसमें अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं को वापस लेने के लिए भी कहा गया हो। भारत में मुश्किल से एक माह के बाद आम चुनाव होने वाले थे।

श्रीमती इंदिरा गांधी जनवरी, 1980 में पुनः सत्ता में आ गईं। इसके उपरांत, भारत द्वारा पूर्व में लिए गए पक्ष में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। सोवियत कब्जे की सार्वजनिक रूप से निंदा करने के स्थान पर, उन्होंने 'अफगान के क्रांतिकारी नेतृत्व को समर्थन दिया तथा उनसे आग्रह किया कि वे सोवियतों की समय के साथ वापसी की आवश्यकता को समझने का प्रयास करें।' इस वक्तव्य को न केवल पश्चिमी मीडिया और विभिन्न अन्वेषकों द्वारा बल्कि कुछ अफगान नेताओं द्वारा भी सोवियत का पक्षधर माना गया। यह सच है कि भारत के पक्ष के बारे में इस प्रकार की भावना को उचित नहीं समझा गया क्योंकि भारत ने सदैव ही अपनी नीति के तौर पर किसी भी देश में विदेशी उपस्थिति का विरोध किया था। परंतु अब चारों ओर, शेष रूप से कुछ अफगान नेताओं के मध्य यह धारणा व्याप्त हो गई थी कि भारत सोवियत संघ का समर्थक है।

मैंने इस बात का अनुभव 1995-96 में मेरी काबुल में तैनाती के दौरान किया। सीडीए के रूप में मेरे कार्यभार संभालने के तत्काल बाद कुछ प्रमुख नेताओं के साथ मुलाकातें निश्चित की गईं। तथापि, दो अनुस्मारक देने के उपरांत भी कुछ विशेष अफगान नेताओं की ओर से कोई प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं हुई। प्रारंभ में, हमने यह सोचा कि वे संभवतः अत्यंत व्यस्त हैं और मेरे लिए समय नहीं निकाल पा रहे हैं। तथापि, हमारे द्वारा की गई गुप्त जांच से यह पता चला कि वे नेता तो मुझसे मिलने के लिए इच्छुक ही नहीं हैं। उन्हें यह कहते हुए पाया गया था कि भारत ने सोवियत संघ के विरुद्ध जिहाद के निर्णायक क्षण में अफगान मुजाहिद्दीन को कोई सहायता प्रदान नहीं की थी। मैं यह बात जानता था कि वे एक कट्टर नेता हैं तथा उन्हें पर्याप्त सऊदी सहयोग हासिल है। वे 1989 में पाकिस्तान में रहते हुए मुजाहिद्दीन गुट के प्रवक्ता भी थे। फिर भी, उन्हें कुछ उचित माध्यमों से सह संप्रेषित किया गया कि भारत कभी भी मौन नहीं रहा है। उसने दोनों पक्षों के बीच हुई अनेक द्विपक्षीय बैठकों में सोवियत कब्जे के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई है। श्रीमती गांधी ने अफगानिस्तान में उनके हस्तक्षेप से औचित्यपूर्ण ठहराने के सोवियत पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए स्पष्टीकरणों को स्वीकार करने से इंकार कर दिया था। वस्तुतः उन्होंने सोवियतों को अपनी शीघ्र वापसी के लिए परिस्थितियां सृजित करने के लिए भी कहा था। उन्होंने कठिन रूप से अपनी यही बात दिसम्बर, 1980 में मास्को में और उसके बाद सितम्बर, 1982 में सोवियत नेता ब्रेजनेव को दोहराई थी। भारत के नेतृत्व में नई दिल्ली में आयोजित गुट-निरपेक्ष शिखर-सम्मेलन ने इस पहलू को स्पष्टतः उल्लेखित किया था जब इसने "क्षेत्र के देशों के आंतरिक मामलों में सभी रूपों से किए गए बाहरी हस्तक्षेप" के प्रति विरोध व्यक्त किया था।

31 अक्टूबर, 1984 को श्रीमती गांधी की मृत्यु³ के पश्चात् राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री पद संभाला। लेकिन, भारत की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मास्को की उनकी यात्रा के दौरान, उन्होंने 22 मई, 1985 को कहा कि "हम इस बात के पक्ष में नहीं हैं कि कोई भी देश किसी अन्य देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप अथवा दखलअंदाजी करें।" अमेरिकी पक्ष भी अफगानिस्तान पर सोवियत कब्जे और वहां बने रहने के प्रति भारत की कड़ी आपत्ति से अवगत था। यह कहा गया था कि अमेरिकी राष्ट्रपति कार्टर ने सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार

³ श्री एस.डी. मुनि द्वारा उनकी पुस्तक 'इंडियाज़ अफगान पालिसी : एमेर्जिंग फ्रॉम दि कोल' में पृष्ठ 335 में एक लेख में भी यह वर्णन किया गया है। यह लेख उनकी पुस्तक 'अफगानिस्तान क्राइसेस : इशूज एंड पर्सपेक्टिव्स' का एक भाग भी है। इस पुस्तक में अफगानिस्तान पर अनेक लेख विद्यमान हैं।

किया था कि अफगानिस्तान विवाद पर भारत का पक्ष सकारात्मक है और यह कि भारत हस्तक्षेप को मान्यता नहीं देता है।

यहां यह उल्लेख किया जाता है कि भारत और सोवियत संघ के बीच संबंध अत्यंत घनिष्ठ और सौहार्दपूर्ण थे। सोवियत संघ कश्मीर मुद्दे पर अपनी वीटो पावर का प्रयोग करते हुए संयुक्त राष्ट्र में भारत की सहायता कर रहा था। सोवियत संघ द्वारा भारत को प्रदान की गई आर्थिक और सैन्य सहायता के फलस्वरूप दोनों देशों के मध्य घनिष्ठ रणनीतिक और राजनयिक संबंध विकसित हुए थे। दोनों देशों ने 9 अगस्त, 1971 को 'भारत सोवियत मैत्री और सहयोग संधि' पर हस्ताक्षर किए थे। इसके बाद, भारत ने अमेरिका द्वारा दी गई गंभीर धमकी के बावजूद बांग्लादेश को स्वतंत्र कराया था। वस्तुतः सोवियत संघ ने पाकिस्तान के विरुद्ध एक आड़ के रूप में तथा चीन और अमेरिका, दोनों ही के विरुद्ध एक महाशक्ति द्वारा बचाव प्रदान करने का कार्य किया था। अतः श्रीमती गांधी ने सोवियत संघ की सार्वजनिक रूप से निंदा करने के स्थान पर द्विपक्षीय बैठकों का माध्यम अपनाया था। सोवियत संघ अफगानिस्तान पर भारत के पक्ष से सहज नहीं था। संभवतः उन्हें यह आशा थी कि भारत उनके पक्ष के प्रति और अधिक सकारात्मक समझ प्रदर्शित करेगा। भारत मामले पर अपनी निराशा प्रदर्शित करने के लिए विवश था क्योंकि अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप ने अफगानिस्तान में अमेरिका और पाकिस्तान द्वारा किए गए हस्तक्षेपों को वैधता प्रदान कर दी थी जिसने अफगानिस्तान से सोवियत वापसी में मामले में परेशानियां उत्पन्न कर दी थीं। भारत इस बात को लेकर चिंतित था कि इससे अमेरिका और पाकिस्तान के मध्य सैन्य संधि और भी सुदृढ़ हुई है जिसके फलस्वरूप पाकिस्तान को एक अग्रणी राज्य के रूप में आर्थिक और सैन्य सहायता की एक व्यापक आपूर्ति प्रदान की गई थी। उच्च-प्रौद्योगिकी वाली इस सैन्य आपूर्ति में एफ-16 और एडब्ल्यूएसीएस भी शामिल थे, जिससे क्षेत्रीय संतुलन पाकिस्तान के पक्ष में चला गया था।

भारत के लिए एक अधिक चिंता का कारण यह था कि सोवियत आक्रमण ने पाकिस्तानी राष्ट्रपति जिया-उल-अक के लिए एक सुनहरा अवसर प्रदान कर दिया था। उन्होंने इसका प्रयोग उनके सैन्य विद्रोह और जुल्फिकार अली भुट्टो को मृत्युदंड देने से उत्पन्न अंतर्राष्ट्रीय पृथक्कीकरण से मुक्ति प्राप्त करने के लिए किया। दूसरी ओर, संभवतः अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने अफगानिस्तान पर सोवियत कब्जे का प्रयोग अत्यंत चतुराई के साथ कश्मीर मुद्दे पर भारत के साथ हिसाब बराबर करने के उद्देश्य से पाकिस्तान की सेना का पुनर्गठन करने के सुदृढ़ बहाने के रूप में किया। उन्होंने निर्णय लिया कि मुहाहिद्दीन नेतृत्व को भेजे जाने वाले सभी हथियार और गोला-बारूद तथा धनराशि पाकिस्तान के माध्यम से भेजी जाएगी तथा सीआईए सहित कोई बाहरी एजेंसी इस कार्य को नहीं करेगी। अफगान मुजाहिद्दीन संगठनों को हथियार और निधियां वितरित करने के लिए आईएसआई को एकमात्र एजेंसी बनाया गया। इसके परिणामस्वरूप, आईएसआई का प्रभाव अत्यंत सुदृढ़ बनता गया। इसके अलावा, सामान्य तौर पर क्षेत्रीय, सुरक्षा और विशेष तौर पर भारत की सुरक्षा संधि द्वारा उत्पन्न हुए इस्लामी उग्रवादी संगठनों के उदय द्वारा संकट में आई। बाद में, इस्लामी उग्रवादी के व्यापक रूप से विस्तार के परिणामस्वरूप नब्बे के दशक में भारत के जम्मू और कश्मीर राज्य में आतंकवादी क्रियाकलापों में भारी वृद्धि हुई।

इस अवधि के दौरान, पाकिस्तान ने परमाणु हथियार हासिल करने की योग्यता अर्जित करने का प्रयास किया। तथापि, अफगानिस्तान विवाद में रुचि के कारण अमेरिका ने अस्सी के दशक में पाकिस्तान के परमाणु कार्यक्रमों की पूर्णतः अनदेखी की थी। पाकिस्तानी अफगान नीति पर अमेरिका की मौन सहमति यह सुझाती है कि इसने अफगानिस्तान में शांति स्थापित करने के स्थान पर भारत के साथ पाकिस्तान की वैमनस्यता के अपने हित के लिए ही कार्य किया। वेनबॉम और हार्डर के लिए अफगानिस्तान में पाकिस्तान की नीति के लक्ष्य (क) पठानिस्तान बनाने के लिए अफगान के कदमों को विफल करना; (ख) भारत के अफगानिस्तान में प्रभाव और उपस्थिति को कम करना; (ग) भारत के साथ व्यापक विवाद के मामले में रणनीतिक गहराई प्रदान करने में अफगानिस्तान को एक आस्ति के रूप में देखना (घ) काबुल में चापलूसी की नहीं तो कम-से-कम मैत्रीपूर्ण शासन

संपोषित करना (ड) इसके विवादों में, विशेष रूप से भारत के साथ, सुरक्षा को महत्व देने के लिए क्षेत्रीय और क्षेत्र-इतर शक्तियों (विशेष रूप से अमेरिका) को आकर्षित करने के लिए अफगानिस्तान का प्रयोग करना।

सोवियतों ने श्रीमती गांधी को कहा कि अमेरिका और चीन ने भारत के लिए प्रत्यक्ष चुनौती प्रस्तुत की है। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को की गई अति-आधुनिक हथियारों की आपूर्ति का प्रयोग भारत के विरुद्ध किया जा सकता है। उन्होंने यह भी बताया कि अमेरिका हिंद महासागर में डिएगो गार्सिया में अपने ठिकाने को विस्तृत बना रहा है तथा चीन भी भारत को अस्थिर बनाने के लिए पूर्वोत्तर में सशस्त्र उपद्रवियों को प्रशिक्षण देना जारी रखे हैं। संयोगवश, चीन भी अफगानिस्तान में सोवियत विरोधी मोर्चों में शामिल हो गया था जिसके फलस्वरूप सोवियत-अमेरिका-पाकिस्तान संधि मजबूत हुई।

सोवियत-विरोधी मोर्चे का एक प्रमुख सदस्य पाकिस्तान भारत को किसी भी ऐसी प्रक्रिया से बाहर रखने के लिए अत्यंत सक्रिय के साथ कार्य कर रहा था जिसमें अफगानिस्तान भी शामिल हो। भारत की भूमिका इस तथ्य द्वारा भी और सीमित हुई कि भारत की अफगानिस्तान के साथ सीमा साझा नहीं होती थी। वार्ताओं में देशों को शामिल करने के लिए सामान्यतः आकलित किए जाने वाले सूत्र में महाशक्तियां और निकटतम पड़ोसी शामिल थे। भारत संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में संचालित वार्ताओं की उन श्रेणियों में किसी में भी सटीक नहीं बैठता था। तथापि, वह काबुल और सोवियत संघ में अफगान शासन के माध्यम से उनके साथ संपर्क में बना रहा। अंततः अफगानिस्तान में तैनात सोवियत टुकड़ियों ने अप्रैल, 1988 में हस्ताक्षरित जिनेवा समझौते में निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ही वापसी करना शुरू कर दिया।

ग. सोवियत आक्रमण के बाद का अफगानिस्तान

सैन्य टुकड़ियों की वापसी फरवरी, 1989 में पूरी हो गई थी। वापसी के उपरांत अनेक मुजाहिद्दीन कमांडरों ने काबुल पहुंचने के लिए एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा की। पूर्व विदेश सचिव जे.एन. दीक्षित के अनुसार, भारत ने एक त्रि-आयामी नीति का मार्ग अपनाया : (क) सभी संगठनों के नेताओं के साथ संपर्क बनाए रखना जिसमें सिबगातुल्ला भोजादेदी, बरहनुद्दीन रब्बानी, गुलबदिन हेकमत्यार और राशिद दो स्तंभ भी शामिल थे, ताकि वह काबुल में किसी भी नेता के सत्तारूढ़ होने पर स्थिति का सामना कर सके ; (ख) आर्थिक और जल स्वास्थ्य क्षेत्रों में यथासंभव सहायता प्रदान करना जारी रखना और (ग) अफगानिस्तान में स्थिति को स्थिर बनाने के लिए विभिन्न राज्यों जैसे रूस और ईरान के साथ संभावनाओं का पता लगाना।

सोवियत टुकड़ियों के वापस जाने के बाद भी भारत ने डा. नजीबुल्ला की सरकार को सहायता जारी रखी। उन्होंने दिसम्बर, 1987 और मई, 1988 में भारत का दौरा किया। उन्होंने एक बार पुनः अगस्त, 1990 में भारत की यात्रा की और स्वापक औषधियों के अवैध व्यापार के निवारण के लिए करार पर हस्ताक्षर किए। भारत की नीति का मुख्य ध्यान "अफगान द्वारा बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप और दखलअंदाजी के स्वयं ही समस्या का राजनीतिक समाधान करने के पक्ष पर था, जिसमें विद्यमान वास्तविकताओं और सभी संबंधितों के वैध हितों को ध्यान में रखा गया था, तथा भारत एक संप्रभु, गुट-निरपेक्ष और स्वतंत्र देश के रूप में अफगानिस्तान की हैसियत के परिरक्षण को समर्थन देता है।"

उपर्युक्त के अलावा, भारत ने न केवल काबुल शासन के ही बल्कि अन्य सभी संभावित अफगान समूहों के साथ भी संपर्क स्थापित किया था जिसमें सोवियत-विरोधी मुजाहिद्दीन छापामार नेता भी शामिल थे। यहां तक कि तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री नटवर सिंह पूर्व अफगान सम्राट जाहिर शाह के साथ बात करने के लिए पेरिस भी गए थे जिसके पीछे यह विचार था कि वह एक स्थिर और तटस्थ अफगानिस्तान के हित में विभिन्न धड़ों को एकीकृत करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

1995-96 में भारतीय मिशन पुनः खोला जाना तथा आंतरिक स्थिति

यह एक सुविदित तथ्य है कि गुलबदिन हेकमत्यार को प्रारंभ में पाकिस्तानी आईएसआई द्वारा अन्य अफगानिस्तान मुजाहिददीन की तुलना में पर्याप्त हथियारों और अधिक धनराशि की आपूर्ति करते हुए तरजीह दी गई थी। तथापि, उन्हें अन्य अफगान संगठनों द्वारा अत्यंत घृणा से देखा जाता था, न केवल इस वजह से कि उन्हें पाकिस्तान द्वारा अधिक महत्व दिया जा रहा था बल्कि इसलिए भी कि वे एक सनकी व्यक्ति थे। उन्हें उनके सख्त और अड़ियल व्यवहार के कारण अधिक देशों द्वारा भी पृथक कर दिया गया था जिनमें सउदी अरब, ईरान और पश्चिमी देश भी शामिल थे। अमेरिका के विरुद्ध उनका वैमनस्य तब स्पष्ट हो गया जब वे सितम्बर, 1995 में न्यूयार्क में थे और उन्होंने वाशिंगटन जाने से साफ इंकार कर दिया था। वे राष्ट्रपति बरहनुद्दीन रब्बानी और अहमद शाह मसूद को अपदस्थ करने के उपरांत पाकिस्तान को लाभ देने में भी असमर्थ रहे थे। यही वजह थी कि अक्टूबर, 1994 में पाकिस्तान ने तालीबान को समर्थन देते हुए उसे परिदृश्य में प्रस्तुत किया।

प्रारंभ में, रब्बानी और मसूद, दोनों ही तालीबान के प्रति अत्यंत उदार थे और सहानुभूति रखते थे। उनका यह मानना था कि तालीबान हेकमत्यार-विरोधी संगठन है। उन दोनों ही ने तालीबान के प्रतिनिधियों के साथ कुछ बैठकें कीं और उनके प्रति उदारता के भाव प्रदर्शित किए। शीघ्र ही यह जगजाहिर हो गया कि तालीबान एक पाकिस्तान-समर्थन उग्रवादी समूह है तथा पूर्णतः पठानी संगठन है। वे काबुल में ताजिक-शासन सरकार के पक्ष में बिल्कुल भी नहीं थे। यहां तक कि तालीबान अन्य नृजातीय समूहों के साथ व्यवहार करने के लिए भी रुचि नहीं लेता था।

नवम्बर, 1994 में कंधार, उरुजगान, जाबुल, पकितया और पकितका पर कब्जा कर लेने के बाद तालीबान ने वार्डक की ओर बढ़ना प्रारंभ किया। फरवरी, 1995 तक वे चारास्याब पहुंच गए जो गुलबदिन हेकमत्यार का मुख्यालय था तथा काबुल के दक्षिण में मात्र 16 किमी की दूरी पर स्थित था। तालीबान के हाथों पराजय झेलने के पश्चात् गुलबदिन ने उस स्थान को छोड़ने तथा जलालाबाद-काबुल राजमार्ग पर सरोबी की ओर जाने का निर्णय लिया। तालीबान अब काबुल के काफी निकट आ चुका था। उन्होंने अहमद शाह मसूद के लिए गंभीर चुनौती पेश की जिसका गुलबदिन हेकमत्यार दोस्तम और हजारा के साथ हुए कड़े संघर्ष के उपरांत शहर पर पूर्ण नियंत्रण था। अब मसूद के लिए तालीबान से लड़ने का समय आ गया था। मार्च, 1995 के प्रारंभ में उसने तालीबान को भारी क्षति पहुंचाई और उसे चारास्याब और रिशकोट की ओर हटने के लिए विवश कर दिया। इस प्रकार काबुल और उसके निकटवर्ती स्थान शांतिपूर्ण थे। हेरात पहले से ही रब्बानी के साथ था। अतः काबुल सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर हासिल करने के लिए मार्च, 1995 में अपना अभियान प्रारंभ किया।

अनेक वर्षों में पहली बार राजधानी में संघर्ष की स्थिति नहीं थी अथवा वह विरोधी सेनाओं द्वारा विभाजित नहीं थी। काबुल का अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा पुनः खुल गया था तथा अफगान एरियाना उड़ानों ने काबुल और नई दिल्ली के बीच सेवाएं प्रारंभ कर दी थीं। विदेशी सरकारों को अपने दूतावास पुनः खोलने के लिए प्रोत्साहित करने के प्रमुख राजनयिक प्रयास शुरू कर दिए गए। इसके फलस्वरूप, भारत सरकार ने काबुल में अपना मिशन पुनः खोलने का निर्णय लिया। इसके तुरंत बाद तुर्की ने भी यही कदम उठाया। हमारे वहां आने से पूर्व पाकिस्तान, ईरान और इंडोनेशिया के चीन दूतावास पहले से ही कार्य कर रहे थे।

1 मई 1995 को हम काबुल में अपने मिशन को पुनः खोलने के लिए नई दिल्ली से एरियाना एयरलाइंस की उड़ान द्वारा काबुल हवाई अड्डे पर उतरे। यह मिशन विभिन्न मुजाहिददीन धड़ों के बीच अफगानिस्तान में चलने वाले नागरिक युद्ध के कारण प्रतिकूल सुरक्षा स्थिति के चलते जनवरी, 1994 में बंद कर दिया गया था। हमारा अफगान नयाचार प्रमुख द्वारा हवाई-अड्डे पर गर्मजोशी के साथ स्वागत किया गया। चूंकि 'इंटर-कांटेनेंटल होटल' नामक एकमात्र पांच-सितारा होटल गोली-बारी के फलस्वरूप क्षतिग्रस्त हो गया था, अतः हमें हमारे दूतावास से लगभग 5 किमी की दूरी पर सहार-ए-नव में स्थित जर्मन क्लब में ठहराया गया। अगले दिन अफगान विदेश राज्य मंत्री के साथ बैठक निर्धारित की गई। उन्होंने भारत की प्रशंसा की तथा मिशन को खोलने के लिए भारत

सरकार का आभार व्यक्त किया। मंत्री ने हमें आश्वासन दिलाया कि हमारे वहां प्रवास को आरामदेह बनाने के लिए सभी संभव सहायता प्रदान की जाएगी। इसके उपरांत हमने 2 मई, 1995 के कार्य करना आरंभ कर दिया।

काबुल में जीवन-यापन की परिस्थितियां अत्यंत विषम थीं। सर्वप्रथम, अहमदशाह मसूद तथा गुलबदिन हेकमत्यार के बीच हुई भीषण गोलाबारी के कारण अधिकांश काबुल, विशेष रूप से इसका बाहरी हिस्सा धूल-धूसरित हो गया था। शहर के ठीक बाहर स्थित अमन पैलेस तो पूरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया था। क्षतिग्रस्त मकान तथा उनकी दीवारों पर गोलियों के निशान स्पष्टतः चारों ओर देखे जा सकते थे। कुल एक मिलियन लोग मारे गए थे तथा एक मिलियन अफगानी या तो मारे गए थे या गंभीर रूप से घायल हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था कि किसी ने भी पीड़ित अफगानियों की सुरक्षा और संरक्षा की परवाह नहीं की थी। लगातार हुए युद्ध ने अनेक लोगों को सुरक्षा के लिए अपने घरों से भागने को मजबूर कर दिया था। देश की लगभग एक तिहाई जनसंख्या पाकिस्तान और ईरान में शरणार्थियों के रूप में रह रही थी। उनका ध्यान रखने के लिए कोई केन्द्रीय प्राधिकारी नहीं था। अफगानिस्तान वस्तुतः शक्तिशाली शासकों के मध्य विभाजित हो गया था जिनका शासन भ्रष्ट और दमनकारी था। वे अपने ही लोगों को लूट रहे थे और मार रहे थे। अनिवार्य वस्तुओं का भारी अभाव था। स्वास्थ्य और स्वच्छता सुविधाएं बुरी तरह से प्रभावित हुई थीं। काबुल के अलावा, लगभग समूचे देश में विद्यालयों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों सहित अधिकांश शैक्षणिक संस्थाएं बंद थीं जिससे पिछड़ेपन और निरक्षरता में और वृद्धि हो रही थी। शहर में बिजली नहीं थी। अधिकांश बिजली के खंबे और तारें उखड़ और टूट गई थीं।

अधिकांश अफगान अपनी आजीविका के लिए कृषि और पशुधन पर निर्भर थे। दुर्भाग्यवश, अफगानिस्तान के विभिन्न भागों में 1971 के बाद एक भयानक सूखा पड़ा। युद्धरत धड़ों ने खड़ी हुई फसलों और फलदार वृक्षों को भी नष्ट कर दिया था। कुछ क्षेत्र अकाल के कारण बुरी तरह से प्रभावित थीं अनेक लोग बेरोजगार हो गए थे तथा उनके लिए रोजगार के वैकल्पिक अवसर विद्यमान नहीं थे। मंहगाई अपने चरम पर थी तथा अफगानी मुद्रा दिन-प्रतिदिन अपना मूल्य खोती जा रही थी। अतः शरणार्थियों सहित अधिकांश अफगानवासी कतिपय संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों और विदेशी एनजीओ द्वारा प्रदान की गई अंतर्राष्ट्रीय सहायता पर निर्भर थे। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वहां शासन का कोई तंत्र विद्यमान नहीं था, अपराधों की संख्या में वृद्धि हो गई थी। नशीले पदार्थों का उत्पादन और उसका अवैध व्यापार कई गुना बढ़ गया था। अतः यह देखा जा सकता है कि सामाजिक और आर्थिक जीवन दिन-प्रतिदिन दुष्कर होता जा रहा था।

हम मई में काबुल पहुंचे थे तथा दिल्ली के विपरीत यहां मौसम अच्छा था क्योंकि काबुल एक पर्वतीय स्थल है जो एक तंग घाटी में समुद्र तल से 5900 फीट की ऊंचाई पर स्थित है तथा हिंदू-कुश पर्वत श्रृंखला के मध्य है। चूंकि काबुल में बिजली नहीं थी और हमारा क्लब शाम को जेनेरेटर का प्रयोग कर रहा था, हमें वहां अधिक कठिनाई नहीं हो रही थी। अधिकांश कर्मों इसके अच्छे मौसम और फलों एवं सब्जियों की उपलब्धता के कारण काबुल की प्रशंसा किया करते थे। हमारे अच्छे दिन शीघ्र ही जून, 1995 में अकस्मात् ही समाप्त हो गए जब हम आधी रात के समय हड़बड़ाकर नींद से उठे। एक लड़ाकू जेट विमान, जो अत्यंत कम ऊंचाई पर उड़ रहा था, हमारे क्लब के छत को लगभग छूता हुआ निकला और उसने उस इलाके में 550-550 किलो के दो बम गिराए। जब तक निकटवर्ती पहाड़ की चोटी से विमान-रोधी गोलाबारी प्रारंभ होती वह लड़ाकू विमान वापस जा चुका था। वह एक घुप्प अंधेरी रात थी तथा विमान की आवाज अत्यंत डरावनी थी। हम लोग कुछ समय तक तो इतने घबरा गए कि किसी ने भी अपने दरवाजों को नहीं खोला। मुझे यह आशंका हुई कि हमारे मिशन को लक्ष्य बनाया गया था। मुझे उस समय राहत महसूस हुई जब हमारे एक सुरक्षा कर्मों ने मुझे फोन पर सूचित किया कि (ब्लैक भारतीय सुरक्षाकर्मों) और दूतावास, दोनों ही सुरक्षित हैं। ये बम निकटवर्ती क्षेत्र सहर-ए-नव में गिरे थे, जिससे तीन व्यक्ति मौके पर ही मारे गए थे और अनेक घायल हो गए थे। क्षेत्र में संपत्ति को भी बहुत नुकसान पहुंचा था। बाद में पता चला वे बमबारी करने वाले मजार-ए-शरीफ से आए थे तथा उन्हें राशिद दोस्तम ने भेजा था।

हमें भारत सरकार के नियमों के अनुसार दो माह की अवधि के पश्चात् नियमित घरों में स्थानांतरित कर दिया गया। चूंकि काबुल में बिजली नहीं थी, वहां जीवन अत्यंत विषम था। डीजल की आपूर्ति अत्यंत कम थी, हमें मिशन में पूरे दिन अपने जेनेरेटर चलाने पड़ते थे और रात्रि में केवल दस बजे तक ही इन्हें चलाया जाता था। वस्तुतः काबुल में कोई भी रात्रि 10 बजे के बाद जेनेरेटर का प्रयोग नहीं करता था। इसके उपरांत, वह शहर एक विशाल कब्रिस्तान की भांति लगता था। शहर में एकदम मौन छा जाता था। यहां तक कि सुई गिरने की आवाज भी घाटी में गूंजती थी। विशेष रूप में गहरी अंधेरी रातों में बाहर निकलना कठिन हो जाता था। हमारे मिशन और घरों में रेत के दोरों से दीवारें बनाई गई थीं ताकि राकेटों के छर्रों से नुकसान न होने पाए। हालांकि अहमद शाह मसूद ने तालीबान को फरवरी, 1995 में चारास्याब से पीछे धकेल दिया था, उन्होंने अक्टूबर, 1995 में पुनः वापसी का प्रयास किया था। दुर्भाग्यवश, काबुल एक बार फिर तालीबान के राकेटों की परिधि में आ गया था। तालीबान राष्ट्रपति के महल को अपने रॉकेटों का निशाना बना रहा था परंतु रॉकेट प्रायः अपने लक्ष्य से भटक जाते थे और अपने लक्ष्य से पहले ही गिर जाते थे जिसमें निर्दोष लोग मारे जाते थे।

रब्बानी और मसूद के लिए यह अत्यंत चौंका देने वाली खबर थी जब उनके गर्वनर इस्माइल खान 5 सितम्बर, 1995 को तालीबान के हाथों हेरात हार गए। उन्होंने हेरात में पाकिस्तान का हाथ होने संदेह व्यक्त किया। अगले दिन, उग्र भीड़ ने काबुल स्थित पाकिस्तानी दूतावास पर धावा बोल दिया और राजदूत काजी हुमायूँ और कुछ अन्य राजनयिकों पर हमला किया। उनका एक कर्मचारी इस हमले में मारा गया। राजदूत को विमान से उपचार के लिए जलालाबाद ले जाना पड़ा। इस दूतावास को धूल-धूसरित कर दिया गया जिसने पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्य के दूतावास के रूप में कार्य किया था। पाकिस्तान ने इस घटना के बाद अपना दूतावास बंद कर दिया। शहर में सुरक्षा की स्थिति निरंतर गिरनी आरंभ हो गई तथा इस घटना ने पाकिस्तान और काबुल शासन के मध्य संबंधों को क्षति पहुंचाई। काबुल में दूतावास पर किया गया हमला एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ तथा इसके बाद से ही पाकिस्तान ने अधिक सक्रियता के साथ तालीबान को समर्थन देना प्रारंभ कर दिया।

तालीबान कंधार से भी हवाई हमले कर सकता था। एक बार जब इस्लामाबाद से एक भारतीय पत्रकार मिशन में मुझसे मिलने आया था और हम 1996 के प्रारंभ में अफगानिस्तान में वर्तमान स्थिति पर चर्चा करने लगे। उसके कुछ समय बाद, तालीबान द्वारा हमारे मिशन के इतने समीप हमला किया गया है कि बमों के धमाकों से हमारी कुर्सियां बुरी तरह हिलने लगीं। उन बमों से दो घर जमीन में समा गए। पांच लोग मारे गए। तालीबान ने जून, 1996 में सभी सीमाएं पार कर दीं जब उन्होंने मरोबी और काबुल की ओर 140 रॉकेट दागे। एक दिन ऐसा भी आया था जब तेहरान की राजनयिकता ने राष्ट्रपति बरहनुद्दीन रब्बानी और गुलबदिन हेकमतयार को एक साथ खड़ा किया। गुलबदिन प्रधानमंत्री के रूप में कार्यभार ग्रहण करने के लिए काबुल आ रहे थे। जैसे ही उन्होंने काबुल के लिए सरोबी के लिए प्रस्थान किया, तालीबान ने रॉकेटों के भारी हमले से उनके रास्ते को अवरुद्ध कर दिया। उन्हें दो बार वापस जाना पड़ा। गुलबदिन शाम को ही काबुल पहुंच पाए। उनका शपथ-ग्रहण समारोह काबुल में इंटर कांटेनेंटल होटल में आयोजित किया गया। आश्चर्यजनक रूप से, वहां भी तीन रॉकेट दागे गए। वहां उपस्थित लोगों में खलबली मच गई। भीड़ में कुछ पाकिस्तान समर्थक भी थे। उनमें से एक को यह कहते हुए सुना गया, "क्या तालीबान को नहीं पता कि हम भी यहां मौजूद हैं।" उस दिन सैंतीस लोग मारे गए। रॉकेटों के धमाकों से दूतावास की खिड़कियों के शीशे दो बार टूटे। संभवतः तालीबान हमारे आवासों पर हमला कर रहा था, परंतु वह अपने लक्ष्य में कामयाब नहीं हो पाया। यह एक निरंतर होने वाली घटना बन गई थी। ऐसी अनेक रातें थीं जब काबुल के क्षेत्र में भारी गोलाबारी के कारण हम सो भी नहीं पाए थे। चूंकि वह पर्वतों से घिरी घाटी थी। हम गोलीबारी की आवाजें स्पष्टतः सुन सकते थे। कुल मिलाकर, काबुल में हमारे पूरे प्रवास के ही दौरान अर्थात् 1 मई, 1995 से 26 सितम्बर, 1996 तक सुरक्षा की स्थिति अत्यंत नाजुक बनी रही। इस बात का डर सताता रहता था कि कोई व्यक्ति कभी भी मारा जा सकता है।

तालीबान द्वारा किए जाने वाले रॉकेट हमलों और हवाई हमलों को ध्यान में रखते हुए, काबुल हवाई-अड्डे को अक्टूबर, 1995 में बंद कर दिया गया तथा अफगानिस्तान की एरियाना की उड़ाने बाग्राम हवाई-अड्डे से संचालित की जाने लगी जो काबुल से 70 किमी की दूरी पर स्थित है।

1996 में काबुल की पराजय

तालीबान के अभ्युदय से पूर्व, भारत की काबुल में पर्याप्त उपस्थिति थी तथा वह मानवीय सहायता उड़ान करता था। लेकिन, चल रहा यह नागरिक युद्ध गहराता जा रहा था और हमने भारत के लिए अपना दूतावास खुला रखना अत्यंत कठिन कर दिया। नवम्बर, 1994 में कंधार, उरुजगान, जाबुल, पकितया और पकितका पर कब्जा कर लेने के उपरांत वे फरवरी, 1995 में वार्डक, चारास्याब और रिशकोट की ओर बढ़ने लगे जहां उन्हें कुछ देर के लिए अहमद शाह मसूद द्वारा रोके रखा गया। सितम्बर, 1995 में पश्चिम में हेरात पर कब्जा करने के उपरांत वे काबुल पर हमले की तैयारी करने लगे। जुलाई, 1996 के प्रारंभ में सउदी अरब जनरल इंटेलीजेंस के प्रमुख प्रिंस तुर्की-अल-मैसल सऊद ने तालीबान के अंतिम अभियान को अंतिम रूप प्रदान करने के लिए पाकिस्तान का दौरा किया। इसके पश्चात् तालीबान ने 11 सितम्बर को जलालाबाद, 24 सितम्बर को सुरोबी और 27 सितम्बर, 1996 को काबुल पर कब्जा कर लिया। पाकिस्तान, सउदी अरब और अमेरिका कथित रूप से इसमें सहायता कर रहे थे। पाकिस्तान अपनी सेना सहित समस्त संभार-तंत्र उपलब्ध करा रहा था। सुरक्षा की स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि भारत के पास 26 सितम्बर, 1996 को अपने दूतावास को बंद करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं रह गया था।

24 सितम्बर, 1996 को, नागर विमानन मंत्री डा. अब्दुल रहमान एक अन्य मंत्री के साथ भारतीय दूतावास आवास में आए और कहा, "भारत ने पर्याप्त मदद और सहायता प्रदान करते हुए अफगानिस्तान के प्रति अपनी मित्रता दर्शाई है। अब समय आ गया है कि हम अपनी जान पर खेलकर भारत के प्रति अपनी मैत्री प्रदर्शित करें।" उन्होंने कहा कि वे भारतीय दूतावास के बंद हो जाने तक काबुल की ओर तालीबान के बढ़ते कदमों को रोके रहेंगे। तालीबान को पाकिस्तान, सउदी अरब और अमेरिका द्वारा मदद मिल रही थी। काबुल के बाहरी इलाकों में इतनी भीषण गोलीबारी चल रही थी कि जमियात की सेनाएं उसका सामना नहीं कर सकती थीं। उन्होंने आगे कहा कि तालीबान आधुनिक हथियारों तथा भारी गोलाबारूद से लैस है तथा अहमद शाह मसूद ने उत्तर में पंजशीर घाटी की ओर हटने का फैसला किया है। उन्होंने कहा कि सभी भारतीय अधिकारियों को तत्काल ही अपना अनिवार्य सामान एक ब्रीफकेस में डाल देना चाहिए और वे शाम तक दूतावास के आवासीय परिसर में पहुंच जाएं। 25 सितम्बर को युद्ध में कुछ ढिलाई थी तथा मंत्री अब्दुल रहमान ने भारतीय सीडीए को बताया कि एक विशेष एरियाना विमान उन्हें 26 सितम्बर, 1996 को दिल्ली ले जाने के लिए तैयार किया गया है।

24 सितम्बर को विश्वसनीय सूत्रों से पता चला कि अहमद शाह मसूद ने अपने लोगों को संयुक्त राष्ट्र परिसर में डा. नजीबुल्ला से भेंट करने के लिए भेजा था। उन्हें यह विकल्प दिया गया था कि वे उनके साथ पंजशीर की ओर जा सकते हैं क्योंकि काबुल शासन ने बिना किसी संघर्ष के राजधानी छोड़ने का फैसला कर लिया था। डा. नजीबुल्ला को उन पर भरोसा नहीं था और उन्होंने काबुल में ही रहने का निर्णय लिया। यह उल्लेख किया जाता है कि अहमद शाह मसूद ने संबंधित लोगों को यह अत्यंत स्पष्ट कर दिया था कि डा. नजीबुल्ला राष्ट्र संपदा है तथा उनके भविष्य पर तब फैसला किया जाएगा जब काबुल में पूर्णतः अंतर्वेशी राष्ट्रीय सरकार काबिज होगी। उन्होंने कहा कि वे और रब्बानी किसी भी बहाने से डा. नजीबुल्ला को छोड़ते हुए अपनी छवि खराब नहीं करेंगे। 25-26 नवम्बर को शहर में काफी डर का माहौल व्याप्त था तथा अधिकांश गैर-पठान लोग इस डर से काबुल छोड़ने की तैयारी कर रहे थे कि तालीबान द्वारा संभवतः उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाएगा। स्रोतों ने यह सूचित किया कि डा. नजीबुल्लाह और उनके छोटे भाई को उनके सहायक और एक रसोइए द्वारा 25 सितम्बर को संपर्क किया गया जब अनेक लोग अपनी जान बचाने के लिए काबुल से भागने की तैयारियां कर रहे थे। उनके

सहायक ने डा. नजीबुल्ला और उनके छोटे भाई को बताया कि उन्हें भी भाग जाना चाहिए और अब काबुल में कोई सरकार नहीं रह गई है। उन्होंने यह भी बताया कि "काबुल में पूरी तरह से अराजकता फैल गई है।" लेकिन यह बताया जाता है कि डा. नजीबुल्ला ने कहा कि "मैं अफगानिस्तान का राष्ट्रपति हूँ। यदि मैं इस प्रकार कायरों की भांति भाग जाऊंगा, तो इतिहास में मेरा क्या स्थान रह जाएगा। अफगानिस्तान के लोग मेरे बारे में क्या कहेंगे उन्होंने कहा कि वे यदि जाना चाहें, तो जा सकते हैं। इसके बाद, एडीसी और वह रसोइया काबुल से फरार हो गया। सूत्रों में मुझे यह भी बताया कि तालीबान के काबुल में प्रवेश करने के तत्काल उपरांत, वे संयुक्त राष्ट्र परिसर की ओर गए जहां डा. नजीबुल्ला और उनके छोटे भाई 16 अप्रैल, 1992 से राजनयिक संरक्षण के अंतर्गत रह रहे थे। वे बलपूर्वक परिसर में घुस गए जहां संयुक्त राष्ट्र परिसर में तैनात सुरक्षाकर्मियों को तैनात किया गया था और उन्हें प्रवेश देने से इंकार किया था। उन्होंने डा. नजीबुल्ला और उनके भाई को बाहर घसीटा और उन्हें निर्दयता के साथ मौत के घाट उतार दिया। स्रोतों ने यह भी बताया कि नजीबुल्ला को मारने और लटकाने के बाद तालीबानी भारतीय दूतावास निवास गए और सीडीए के बारे में पूछा। उन्होंने वहां घरेलू नौकर से पूछा "साफिर-ए-हिंद गुजास्त?" नौकर ने बताया कि "हिंद राफ्त"(भारत का राजदूत कहां हैं) नौकर ने कहा कि वे भारत के लिए निकल गए हैं। उन्हें नौकर की बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने पूरे घर की छानबीन की तथा वहां से काफी सामान ले गए। कथित रूप से पाकिस्तान के आंतरिक मंत्री, नसीरुल्ला बाबर और जमात-उन-उलेमा-इस्लाम प्रमुख मौलाना फजलुर रहमान तालीबान का नेतृत्व कर रहे थे, जब उन्होंने 27 सितम्बर, 1996 के प्रारंभ में काबुल में प्रवेश किया था।

अन्य देशों के अफगानिस्तान के साथ संबंध

क. पाकिस्तान

काबुल में 27 सितम्बर, 1996 से 16 नवम्बर, 2001 तक तालीबान शासन को छोड़कर, पाकिस्तान काबुल में अपनी पसंद की सरकार को काबिज कर पाने में असमर्थ रहा है। 'रणनीतिक गहराई' का अनुसरण करना पाकिस्तान की अफगान नीति का केन्द्र रहा है जो भारत के साथ किसी विवाद की स्थिति में उसके लिए लाभप्रद हो सकता है। इसके अलावा, पाकिस्तान काबुल में ऐसी सरकार स्थापित करने की मंशा भी रखता है जो पाकिस्तान के भीतर नृजातीय-राष्ट्रवादी मुद्दों में हस्तक्षेप न करती हो तथा दो देशों के बीच सीमा के रूप में ड्रेंड रेखा पर प्रश्न न करती हो। इस्लामाबाद में अनेक सरकारों ने पठानी राष्ट्रवादिता की ताकतों और अन्य केन्द्रीय प्रवृत्तियों को कम करने का प्रयास किया है तथा एक ऐसी इस्लाम-केन्द्रित राष्ट्रवादिता को संपोषित करने पर जोर दिया है जो नृजातीय सीमाओं से परे हो। यही कारण है कि पाकिस्तान ने अफगानिस्तान में सुनी इस्लामी दलों को समर्थन दिया है जो मुख्य रूप से पठान हैं जैसे गुलबदिन हिकमत्यार का हिज्ब-ए-इस्लामी तथा क्वेटा शुरा तालीबान।

काबुल में 1992-96 तक रब्बानी की सरकार तथा पाकिस्तान के बीच संबंध कभी भी सहज नहीं रहे हैं। हालांकि वे राष्ट्रपति थे, परंतु अहमद शाह मसूद ही सदैव निर्णय लिया करते थे। उनके पाकिस्तान के साथ संबंधों ने उनकी पारस्परिक असहजता को छला है। वे इस बात से पूरी तरह से अवगत थे कि हेकमत्यार को आईएसआई का समर्थन प्राप्त हो रहा है। अप्रैल, 1992 में नजीबुल्ला के जाने के कुछ ही दिनों के भीतर मसूद काबुल में अपनी सेनाओं के साथ पहुंच गए। उसी समय से पेशावर में नारे लगने लगे (ताजिक काबुल में शासन कैसे करेगा?) जिनमें अहमद शाह मसूद की बछा साक्वो के साथ तुलना की गई थी जो एक ताजिक विद्रोही था जिसने 1929 में एक छोटे समय तक काबुल ताज पर कब्जा किया था। आईएसआई में अनेक सोवियतों के साथ संघर्ष करने की उनकी प्रतिबद्धता को लेकर संदेह करते थे। कुछ ने तर्क दिया कि चूंकि पंजशीर में उसकी मजबूत पकड़

सालांग सुरंग के मुख पर अवस्थित है, वह सोवियतों की मुख्य आपूर्ति को रोक सकता है। वे यह बात भूल गए कि अहमद शाह मसूद एक प्रख्यात छापामार योद्धा-प्रमुख था और सालांग सुरंग को लंबे समय तक अवरूद्ध करने के लिए एक निश्चित स्थिति आवश्यक थी। उसने उस समय कड़ा विरोध किया जब सोवियत सेनाओं ने पंजशीर घाटी को पार करने का प्रयास किया। काबुल शासन और पाकिस्तान के बीच संबंध तब और भी खराब हो गए जब यह पता लगा कि तालीबान पाकिस्तान के निर्देशों के अंतर्गत कार्य कर रहा है तथा उसका संगठन एक पूर्णतः पठानी संगठन है। 5 सितम्बर, 1995 को हेरात की पराजय एक बड़ा धक्का थी। मसूद के समर्थकों की एक बड़ी भीड़ ने 6 सितम्बर, 1995 को पाकिस्तानी दूतावास पर हमला कर दिया तथा पाकिस्तानी राजदूत काजी हुमायूँ और सभी राजनयिकों पर गंभीर हमला कर दिया। इस घटना के बाद पाकिस्तान ने काबुल के अपने दूतावास को बंद कर दिया। यह केवल तभी खुला जब तालीबान ने 27 सितम्बर, 1996 को काबुल पर कब्जा जमा लिया।

ख. ईरान

जब हम 2 मई, 1995 को अपना मिशन पुनः खोलने के लिए काबुल पहुंचे, तो ईरानी दूतावास पूरी तरह से कार्य कर रहा था। इसके प्रमुख ऐसे राजदूत थे जिन्हें बाद में सीडीए से बदल दिया गया था। प्रारंभ में, ईरानियों की सोच पंथवादी तर्ज पर थी। वे नजीबुल्ला के जाने के बाद किसी भी आंतरिक व्यवस्था में शिया समूह के लिए प्रतिनिधित्व का कुछ भाग चाहते थे। लेकिन, तालीबान के उदय ने शिया-विरोधी भावना के चलते ईरानियों के लिए एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत की जो तालीबान ने सउदी साला प्रभाव के अंतर्गत संचालित मदरसों से हासिल की थी। दूसरी ओर अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि अहमद शाह मसूद की सेनाओं द्वारा तालीबान तथा हिज्ब-ए-वाहदत को पीछे धकेलने और 19 मार्च 1995 को रिशकोट और चारास्याब पर नियंत्रण कर लेने के बाद, तालीबान ने गद्दारी के आरोपों के कारण वाहदत प्रमुख अब्दुल अली आजादी की हत्या कर दी थी। इस अवस्था पर, ईरान द्वारा तालीबान को शिया-विरोधी और ईरान-विरोधी संगठन के रूप में देखा जाता था। ईरान ने अपनी विदेश नीति में परिवर्तन कर दिया तथा वह रब्बानी और मसूद के निकट आ गया। इसके अलावा, यह ईरान द्वारा की गई एक ऐसी पहल थी जिसने जून, 1996 में काबुल में रब्बानी और हिकमत्यार को एक साथ किया। हिकमत्यार प्रधानमंत्री के तौर पर रब्बानी की सरकार में शामिल हो गए। अमेरिका इस घटनाक्रम से प्रसन्न नहीं था तथा उसने इस ईरानी फैसले के चलते तालीबान का पक्ष लेना प्रारंभ कर दिया। अगस्त, 1998 में नैरोबी और दर-एस-सलाम स्थित अमेरिका दूतावासों पर बमबारी के उपरांत तालीबान के प्रति अमेरिका के रुख में उल्लेखनीय परिवर्तन आया, जब मुख्य अभियुक्त ने अफगानिस्तान में शरण ले ली और तालीबान ने अमेरिका के साथ सहयोग करने से इंकार कर दिया। तथापि, ईरानियों ने उत्तरी गठबंधन सेना को सहयोग देना और वित्तीय दृष्टि से सहायता करना तब तक जारी रखा, जब तक नवम्बर, 2001 में अफगानिस्तान से तालीबान का सफाया न हो गया।

ग. रूस

रूसियों की 1995-96 में काबुल में कोई उपस्थिति नहीं थी। एकमात्र रूसी, जो प्रत्येक तीन-चार माह में भारतीय दूतावास आया करते थे, काबुल में पूर्व रूसी दूतावास पूर्व-रक्षा सलाहकार थे। वस्तुतः दिसम्बर, 1991 में सोवियत संघ के विघटन के उपरांत, रूसी राजनयिकता मुख्य रूप से सीआईएस को सुदृढ़ बनाने तथा तत्कालीन सोवियत संघ के तत्वों के साथ रूसी प्रभाव का नवीकरण करने पर केन्द्रित हो गई थी। जहां तक अफगानिस्तान का संबंध है, रूसियों ने अहमद शाह मसूद का पक्ष लिया जिसके साथ उनके नब्बे के दशक में अफगान जिहाद के दिनों से ही संबंध थे। 1992 में काबुल पर कब्जा कर लेने के पश्चात् मसूद ने अपनी अभिरक्षा में रखे कुछ रूसी कैदियों को वापस लौटा दिया। रूस ने भी भारत और ईरान के साथ घनिष्ठ संबंध बनाकर सहायता के संदर्भ में मसूद के नेतृत्व वाले उत्तरी गठबंधन को समर्थन प्रदान कर रहे थे। तालीबान का उदय रूस और मध्य एशियाई पड़ोसियों के लिए सुरक्षा संवेदी कारणों के चलते एक बड़ी चुनौती थी। अतः रूस ने "सिक्स-प्लस-टू" बैठकों में भाग

लिया जिसका उद्देश्य तालीबान द्वारा फैलाए जाने वाले इस्लामी उग्रवाद तथा अत्यंत निष्कृष्ट इस्लामी कट्टरवाद का सामना करना था। इस्लामी आंदोलन का उदय भी मुख्य रूप से खाड़ी राज्यों से आने वाले व्यापक योगदान के कारण हुआ जिसका प्रयोग सउदा साला मदरसों की स्थापना करने तथा धर्म का पुनरुद्धार करने के लिए किया गया था। रूसी-तालीबान पारस्परिक वैमनस्यता को स्पष्ट: देखा जा सकता है क्योंकि तालीबान ही एकमात्र ऐसी सरकार थी जिसने चेचेन्या को एक स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता दी थी और जनवरी, 2000 में उसे काबुल में अपना दूतावास खोलने की अनुमति दे दी थी।

अफगानिस्तान में अलकायदा सहित इस्लामी उग्रवादी संगठनों की उपस्थिति ने भी तालीबान के प्रति वैमनस्यता में वृद्धि की। इसके अलावा, तालीबान ने ओसामा बिन लादेन और ऐसे अन्य आतंकवादियों को सौंपने के लिए विभिन्न देशों द्वारा किए गए अनुरोधों पर कोई कार्यवाही करने से भी इंकार कर दिया जिनके विरुद्ध नृशंस अपराधों में शामिल रहने के पर्याप्त साक्ष्य विद्यमान थे जिनमें न्यूयार्क में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर में हुआ 9/11 का बम धमाका भी शामिल था। यही कारण था कि अमेरिकी सैन्य हस्तक्षेपों को रूस, चीन और मध्य एशियाई गणराज्यों सहित किसी भी अन्य देश से प्रतिकूल प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं हुई। तालीबान के सत्ता से बाहर जाने पर राहत की सांस ली गई थी। उन सभी ने बोन प्रक्रिया का स्वागत किया तथा अफगानिस्तान के पुनर्गठन और स्थायित्व के लिए आयोजित किए गए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लिया।

घ. अमेरिका

सुरक्षा कारणों के चलते जनवरी, 1989 में अमेरिकी दूतावास बंद कर दिया गया था। यह तालीबान शासन के समाप्त होने पर नवम्बर, 2001 में ही पुनः खोला गया। इस बीच, अमेरिका संयुक्त राष्ट्र, रेड क्रॉस, रेड क्रीसेंट और केयर के माध्यम से वहां मानवीय सहायता प्रदान कर रहा था। जहां तक अमेरिका का संबंध था, 1989 में सोवियत कब्जे की समाप्ति के उपरांत अफगानिस्तान उनके लिए गुमनामी के दौर से गुजर रहा था। नब्बे के दशक के मध्य में ही अमेरिकी आसूचना समुदाय ने अफगानिस्तान में संचालित किए जा रहे कुछेक अलग-थलग पड़े संगठनों की ओर से सुरक्षा संबंधी जोखिम दिखाई देना प्रारंभ हो गया था। इस दौरान, ईरान की रब्बानी के काबुल शासन और हिकमतयार के साथ बढ़ती घनिष्ठता ने भी वाशिंगटन में तनाव कारित कर दिया था।

पाकिस्तान में भी बेनजीर भुट्टो सत्तारूढ़ हो गई थीं। वह न तो रब्बानी से प्रसन्न थीं और न ही हिकमतयार से। वह उनके पिता के अफगान और सीमावर्ती मामलों के वरिष्ठ सलाहकार जनरल नसीरुल्ला बाबर पर अत्यधिक भरोसा करती थीं जो एक सेवानिवृत्त अधिकारी थे और जिन्हें उनके द्वारा आंतरिक कार्य मंत्री नियुक्त किया गया था। जनरल बाबर ही तालीबान को मुख्यधारा में लेकर आए थे। वस्तुतः बेनजीर भुट्टो हिकमतयार को त्यागने के लिए तैयार थी, यदि अमेरिका तालीबान की सहायता से रब्बानी को काबुल से अपदस्थ करने में उसकी मदद करने के लिए सहमत होता। अमेरिका भी अफगानिस्तान में चलने वाले नागरिक युद्ध से परेशान हो चुका था। इसके अलावा, इसी दौरान तुर्कमेनिस्तान से अफगानिस्तान होते हुए पाकिस्तान तक गैस पाइपलाइन को बिछाने के लिए अमेरिकी प्राइवेट कंपनी यूनोकल और कैलीफोर्निया की डेल्टा तेल कंपनी के अधिकारियों के बीच बातचीत चल रही थी। इसमें अभी कुछ अंतिम निष्कर्ष नहीं निकला था, परंतु अमेरिकी राज्य विभाग इस बात से अवगत था। यह एक विशाल परियोजना थी जिसे लिए अफगानिस्तान में शांति अनिवार्य थी। ईरान की पहल पर हिकमतयार 26 जून, 1996 को प्रधानमंत्री के रूप में रब्बानी की सरकार में शामिल हो गए। भारत के प्रधानमंत्री देवेगोडा ने अफगानिस्तान के प्रधानमंत्री का पद ग्रहण करने पर हिकमतयार को बधाई संदेश प्रेषित किया। इसके उपरांत, भारतीय सीडीए ने काबुल में 15 अगस्त, 1996 को मनाए जाने वाले भारत के स्वतंत्रता दिवस समारोह में शामिल रहने के लिए हिकमतयार को निमंत्रण भेजा। इन सभी घटनाक्रमों को अमेरिका द्वारा पसंद नहीं किया गया। अतः यह स्पष्टतः दिखाई दिया कि अफगान के राजनीतिक परिदृश्य पर अक्टूबर, 1994 को उभरने वाले तालीबान आंदोलन को अमेरिका द्वारा प्रत्यक्ष समर्थन दिया गया था।

तालीबान ने अफगानिस्तान में निरंतर बढ़ती अफीम की खेती को समाप्त करने, सशस्त्र छापामारों को निःशस्त्र करने और देश को एक स्थिर सरकार के अंतर्गत पुनःसंगठित करने, इस्लामी कट्टरवादिता के विरुद्ध संघर्ष करने और उन आतंकवादियों को निकाल बाहर करने का वचन दिया जिन्होंने देश में शरण ली हुई थी। वे अन्य दो देश पाकिस्तान और सउदी अरब थे जो तालीबान को हर प्राकर की सहायता मुहैया कराने के लिए अति सक्रिय थे। अंततः उन्होंने 27 सितम्बर, 1996 को काबुल पर कब्जा कर दिया तथा मसूद की सेनाएं पंजशीर की ओर पीछे हट गईं। इस प्रकार, तालीबान को काबुल थाली में परोस कर दे दिया गया था क्योंकि अहमद शाह मसूद उनके बढ़ते कदमों को रोक पाने में सफल नहीं हो पाया था जिसकी वजह यह थी कि तालीबान के पास पर्याप्त अति आधुनिक हथियार और पैसा था जो उसे पाकिस्तान, सउदी अरब और अमेरिका द्वारा मुहैया कराया गया था। इसके अलावा, मसूद ने हिजब-ए-इस्लामी के कमांडरों पर भी भरोसा नहीं किया। इसके बाद, एक ऐसी अवधि आई जिसमें अमेरिका के तालीबान के साथ उभयमुखी संबंध थे, जो उस इस्लामी अमीरात को मान्यता नहीं देता जो 90 प्रतिशत अफगानिस्तान पर नियंत्रण करता था। तथापि, अमेरिका विनिर्दिष्ट मुद्दों पर बिचौलियों के माध्यम से तालीबान प्राधिकारियों के साथ सक्रियता के साथ बनाए हुए था।

इसकी विचारधारा में उस समय एक बड़ा परिवर्तन आया जब अमेरिका के ध्यान में यह लाया गया कि ओसामा बिन लादेन ऐसे कुछ आतंकवादी तत्वों को वित्त-पोषण कर रहा है जिनका खोबरे टावरों पर जून, 1996 को किए गए हमले में हाथ होने की संभावना है। तथापि, अगस्त, 1998 में कीनिया और तंजानिया में स्थित अमेरिकी दूतावासों पर की गई बमबारी के फलस्वरूप अल कायदा के क्रियाकलापों के प्रति अमेरिका के दृष्टिकोण में उल्लेखनीय परिवर्तन आया और यह भी पता चला कि उसके तालीबान के साथ घनिष्ठ संबंध है। अमेरिका के दूतावासों पर हमले के लिए ओसामा के विरुद्ध पर्याप्त पारिस्थिकीय साक्ष्य विद्यमान थे परंतु तालीबान ने न केवल उसे पकड़कर सौंपने से बल्कि उसे अफगानिस्तान से बाहर निकालने से भी स्पष्टतः इंकार कर दिया। इसके बाद, अमेरिका ने पाकिस्तान से संपर्क किया, लेकिन इससे भी कोई लाभ नहीं हुआ। अमेरिका और संयुक्त राष्ट्र द्वारा अगस्त, 1999 में लगाए गए प्रतिबंधों का भी तालीबान पर अधिक प्रभाव नहीं हुआ। अंततः न्यूयार्क स्थित वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर 9/11 की बमबारी ने तालीबान के विरुद्ध व्यापक घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय समर्थन प्राप्त कर लिया। बुश प्रशासन को अंतर्राष्ट्रीय गठबंधन स्थापित करने में कोई समस्या नहीं हुई। उत्तरी गठबंधन की सहायता से अफगानिस्तान से तालीबान का सफाया करने में अमेरिका को केवल दो माह का समय ही लगा।

निष्कर्ष

पाकिस्तान की सैन्य सहायता, सउदी अरब की वित्तीय सहायता और अमेरिका की मौन सहमति से तालीबान ने काबुल के विरुद्ध एक बड़े आक्रमण की तैयारी कर ली थी। अंततः राजधानी पर तालीबान द्वारा 27 सितम्बर, 1996 को कब्जा कर लिया गया। लेकिन, भारत ने तालीबान शासन को मान्यता नहीं दी तथा उसने निरंतर अहमद शाह मसूद के उत्तरी गठबंधन को अपना सहयोग प्रदान करना जारी रखा। इस शासन को पाकिस्तान, सउदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात द्वारा ही मान्यता प्रदान की गई। 9/11 के हमलों तथा अफगानिस्तान में अमेरिकी नेतृत्व में किए गए युद्ध के बाद ही भारत ने काबुल के साथ अपने पूर्ण राजनयिक संबंध पुनः स्थापित किए।

भारत और पाकिस्तान दोनों ही अनंत काल से एक-दूसरे के अत्यंत निकट रहे हैं। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संपर्कों के आधार पर उनके द्विपक्षीय संबंध पारंपरिक दृष्टि से अत्यंत सुदृढ़ और मैत्रीपूर्ण रहे हैं। वस्तुतः उनके संबंधी नई दिल्ली और काबुल स्थित सरकारों तक ही सीमित नहीं है। दोनों देशों के बीच लोगों के

⁴ इस्लामी उग्रवादियों और अल कायदा की उपस्थिति से उत्पन्न वैमनस्यता को सविता पांडेय द्वारा उनके 'ओसामा बिन लादेन, अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद और अफगानिस्तान' नामक लेख में अत्यंत विस्तार से वर्णित किया गया है। यह लेख उपर्युक्त पैरा में उल्लिखित पुस्तक का भाग भी है।

संपर्क भी पर्याप्त सुदृढ़ रहे हैं। तालीबान अवधि की बात न भी करें, तो भी भारत हमेशा अफगानिस्तान की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहा है। सोवियत संघ के विरुद्ध अफगानिस्तान का संघर्ष तथा मुहाहिद्दीन के मध्य छिड़े पश्चातवर्ती नागरिक युद्ध के दौरान हुई तबाही को ध्यान में रखते हुए, भारत अफगानिस्तान के पुनर्गठन और पुनर्वास कार्यक्रमों में निरंतर उल्लेखनीय भूमिका निभाता रहा है। भारत की विकास सहायता जो लगभग 2 बिलियन यूएस डॉलर की है, अफगानिस्तान में शांति, स्थायित्व और समृद्धि स्थापित करने की इसकी अटूट प्रतिबद्धता का सुदृढ़ संकेत है। भारत क्षेत्रीय देशों में, अफगानिस्तान को सबसे सहायता प्रदान करता है। भारत यह विश्वास भी करता है कि अफगानिस्तान भारत और मध्य एशियाई राज्यों के बीच संपर्क स्थापित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, जो प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है। इसके अलावा, इस बात की भी अत्यंत आवश्यकता है कि तापी और चारहार जैसी बड़ी परियोजनाओं में किए गए भारी निवेश को आतंकवादी गतिविधियों से सुरक्षित रखा जाए।

संदर्भ

1. अफगानिस्तान - मुल्ला, मार्क्स एंड मुजाहिद, राल्फ एच. मैग्नस और राडेन नाबी, वेस्ट व्यू प्रेस - हर्पर एवं कालिंस प्रशासकों का प्रभाग।
2. अफगानिस्तान एंड पाकिस्तान - कंफ्लिक्ट, एक्सट्रीमिज्म एंड रेजिस्टेंस टु मॉडर्निटी, रियाज मोहम्मद खान, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस
3. दि अफगानिस्तान क्राइसेस - इशूज एंड पर्स पेक्टिव्स, संपादन के. वारिकू द्वारा, प्रकाशक : भावना बुक्स एंड प्रिंट्स नई दिल्ली।
4. इंडो-अफगान रिलेशंस, मुजप्फर एच. सईद, प्रकाशक: आरेंज बुक्स इंटरनेशनल, नई दिल्ली - 110012.
5. दि अफगान कंफ्लिक्ट एंड इंडिया, पी. स्टोडन(दिल्ली पेपर्स 6) प्रकाशक : इंस्टिट्यूट फॉर डिफेंस स्टडीज़ एंड एनालाइसेस
6. इंटरनेशनल इंटरवेंशन इन अफगानिस्तान - मोटिव्स एंड अप्रोचेज, संपादन अर्पिता बासु, आईसीड ब्यू ए प्रकाशन।
7. अफगान एंड सुपर पावर, मोहम्मद खालिद मरूफ, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स।